समुदाय व संरक्षण

समुदाय आधारित जैवविविधता संरक्षण तथा आजीविका सुरक्षा

अंक १४, नं. १ मार्च - अगस्त २०२५

विषय सूचि

प्रस्तावना

१. समाचार और जानकारी

- काठमांडू की मध्य युग की जल प्रणाली: सततता की परिभाषा
- मुला–मुत्ता के भविष्य को कंक्रीट खतरा: पुणे रिवरफ्रंट परियोजना
- वैश्विक आदिवासी अधिकार समूह का कहना है भारतीय सरकार की ग्रेट निकोबार परियोजना से शोम्पेन आदिवासी खत्म हो जाएंगे

२. दृष्टिकोण

- पारिस्थितिकीय पुनर्जनन के लिए एक छोटी–सी कोशिश
- पारिस्थितिकीय तंत्र की सोच
- विचारों की लहरें: समुद्री जैवक्षेत्रवाद में विज्ञान और आत्मा का एकीकरण

३. उम्मीद के निशाँ

- पारिस्थितिकीय तंत्र पुनर्स्थापन समुदाय: जॉन डी. लिउ

४. उदहरणात्मक अध्ययन

- लोगों में निहित, सामूहिक कार्रवाई के माध्यम से वनों का पुनर्स्थापन (विशेष रूप से लिखित)
- ज्ञान और अनुभव साझा करके समुदाय–आधारित संरक्षण को बढ़ावा देना

पारिस्थितिक पुनर्स्थापना

प्रस्तावना

इस शब्द का सबसे पहला प्रयोग रिस्टोर – रीस्टोरेन था, मध्य अंग्रेजी में – लगभग १३०० ई. में दर्ज किया गया था, जिसका अर्थ है वापस देना, उपचार करना, इलाज करना। इसलिए, पुनर्स्थापन के काम में मूल रूप से देखभाल और उपचारात्मक तरीकों से पारस्परिक व्यवहार करने की प्रवृत्ति निहित है।

मनुष्य जिस प्रकार अन्य मनुष्यों के साथ अपने रिश्ते में कटाव महसूस कर रहे है, मानव प्रजाति, प्रकृति और यहाँ तक कि आस्था से भी ज़्यादा, उसके कारण इस ग्रह पर जो कि उनका एकमात्र आवास है, बेहद विकृत शोषण शुरू हो गया है। हमारी बाहरी पारिस्थितिक प्रणालियों का पूरी तरह से विनाश, हमारी आंतरिक पारिस्थितिकी में पड़ी दरारों को दर्शाता है। पारिस्थितिकीय पुनर्स्थापन के काम की शुरुआत तक करने के लिए, हमें देखभाल और जुड़ाव के साथ अपने संबंधों को सुधारना शुरू करना होगा और यह सीखना होगा कि इसे सामूहिक रूप से कैसे किया जाए।

यहाँ पुनर्स्थापन की कई प्रेरक कहानियाँ प्रस्तुत की गई हैं, जिनमें आंतरिक–बाहरी पारिस्थितिकी, प्राचीन जल प्रणालियाँ, देशी प्रजातियों के ज्ञान का दस्तावेजीकरण और पुनर्स्थापन पर काम करने के इच्छुक लोगों के लिए संसाधनों का डेटाबेस तैयार करना, जैव–क्षेत्रीय दृष्टिकोण से समुद्री पारिस्थितिकी का संरक्षण, संरक्षण और पुनर्स्थापन के स्थानीय शासन में सामुदायिक भागीदारी की भूमिका आदि शामिल हैं।

वैध पारिस्थितिक पुनर्स्थापन क्या है, यह समझने के लिए हमें ऐसे सवाल पूछने की आदत डालनी होगी जो इन आपस में जुड़े मुद्दों के जाल को सुलझाने में मदद करें। ऐसा ही एक मामला पुणे की रिवरफ्रंट विकास परियोजना का है, जिस पर आलोचनात्मक रूप से विचार करना ज़रूरी है। पहली नज़र में यह शहर के नदी पारिस्थितिकी तंत्र को साफ़ और पुनर्स्थापित करने की एक सराहनीय पहल प्रतीत होती है, लेकिन आँकड़ों पर गहराई से नज़र डालने पर पारिस्थितिक ज़िम्मेदारी के बिना अविवेकी विकास की एक भयावह तस्वीर सामने आती है, जो पुनर्स्थापन के दावों से कहीं ज़्यादा नुकसान पहुँचा रही है।

इस संस्करण में न केवल पुनर्स्थापन के पहलुओं का पता लगाने का प्रयास किया गया है, बल्कि यह भी कि क्या हर एक चीज का पुनर्स्थापन करना ज़रूरी है।

अरनाज़

१. समाचार और जानकारी

काठमांडू की मध्य युग की जल प्रणाली: सततता की परिभाषा

सलाम राजेश

इन रोचक कथाओं के बीच, मणिपुर के उत्तरी सेनापति ज़िले के लियाई खुल्लेन गाँव में दिखाई देने वाली पारंपरिक जल प्रबंधन प्रणाली भी है। इस गाँव द्वारा अपनाया गया सिद्धांत काठमांडू की हीटी प्रणाली और सेथो की दाऊहानप्रणाली से मिलता–जुलता है। शीशे जैसे साफ़ पानी के प्रवाह को नहरों के माध्यम से प्रवाहित किया जाता है और काठमांडू के ढूँगे धारा जैसे पानी के टैंकों में संग्रह किया जाता है।

काठमांडू शहर में मंगल बाज़ार का हमनाम, मणिगाला, मन को झकझोर देने वाला एक स्थान है, जहाँ लोग असंख्य चींटियों की तरह आते–जाते दिखाई देते हैं, और नेपाल के मध्ययुग के राजाओं के इतिहास और उनके हिंदू और बौद्ध पौराणिक कथाओं के देवताओं की महिमा की झलक लेकर खुद को तृप्त करने की कोशिश करते हैं।

भव्य मंदिर संरचनाएँ, मंदिर परिसरों में गुंधी हुई प्राचीन जल प्रबंधन प्रणाली के एक आकर्षक जाल को उजागर करती हैं, जो शहर की आबादी के लिए लगातार जल आपूर्ति प्रदान करती है, और आँखों से छिपी हुई है।

शहर के धोबीघाट में ढूँगे धारा या मध्ययुग में बनाए गए पत्थर के झरने, जलमार्गों की एक ढकी हुई भूलभुलैया के माध्यम से एक दूसरे से जुड़े जल बिंदुओं का एक सूत्र हैं। काठमांडू शहर के दक्षिणी भाग में पाटन में स्थित ढूँगे धाराएँ, नेपाल के मध्ययुग इतिहास के दौरान काठमांडू घाटी पर शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों द्वारा बनाए गए प्रभावशाली मध्ययुग के मंदिरों और महलों के बीच बनी एक और अद्भुत स्थल हैं।

इस हिमालयी देश के इतिहास के अनुसार, ऐसा कहा जाता है कि मध्ययुगीन काल में काठमांडू घाटी पर शासन करने वाले लिच्छवी राजवंश ने दो महत्वपूर्ण व्यापार मार्ग विकसित किए, एक तिब्बत में ल्हासा से जुड़ा था और दूसरा भारत की ओर जाता था, और ये ऐतिहासिक मार्ग मणिगाला में आकर मिलते थे।

पाटन में मध्ययुग की वास्तुकला की एक प्रमुख विशेषता, हनुमान–धोका दरबार चौक का एक आकर्षक पहलू वहाँ पर बने हखा खुशी नामक झरने की कहानी है जो प्राचीन काल में दक्षिण–उत्तर दिशा में बहती थी और बाद में लुप्त हो गई।

यह कहानी मई के वार्षिक अनुष्ठानिक उत्सव के अवसर पर उजागर होती है, जब दो विशाल बुंगाद्याह के रथों को चौक के पार खींचा जाता है। रथ खींचने के उत्सव में शामिल होने वाले प्रत्येक व्यक्ति को चौक पर आगे बढ़ते समय अपने जूते उतारने पड़ते हैं, जिसके पीछे यह विश्वास है कि वे उस पौराणिक झरने को पार कर रहे हैं, जो कभी वहाँ से बहा करता था।

किसी समय में इस चौक में बहने वाले प्राचीन झरने की मान्यता और ढूँगे धारा की मौजूदा संरचना में एक रहस्य छिपा है, जो सदियों से स्थानीय लोगों को निर्बाध रूप से जल आपूर्ति प्रदान करती आ रही है। स्थानीय मध्यकालीन इतिहास के विद्वान ऋषि अमात्य के अनुसार, चौक में स्थित सभी जल कुंड पाइपलाइनों के एक गुप्त नेटवर्क से जुड़े हैं। यह जल आपूर्ति नेटवर्क अपने आप में अद्भुत है।

ये जलस्रोत लोहे से ढाले हुए पाइप हैं, जिन्हें हिंदू पौराणिक कथाओं के पात्रों की मूर्तियों से अलंकृत किया गया है। प्रत्येक मूर्ति – मगरमच्छ, मछली, पक्षी – ढूँगे धारा में आने वाले जिज्ञासु आगंतुकों के लिए अपनी अलग कहानी कहती है।

फौज़ान अली इखसान इत्यादि. (२०२२) ने अपने शोधपत्र 'इंडोनेशिया पर्वतीय क्षेत्र में वैश्विक जलवायु परिवर्तन लचीलेपन की दिशा में हिंदू जावानीस सामुदायिक बस्तियों की जल स्थिरता अवधारणा' (https://www.researchgate.net/publication/365988865) में दर्शाया है कि, प्राचीन सभ्यताओं ने साबित किया है कि पारंपरिक बस्तियों का जल प्रबंधन स्थानीय

ज्ञान पर आधारित हुआ करता था। उदाहरण के लिए, नेपाल में काठमांडू के पर्वतीय क्षेत्र के लोगों के पास हीटी नामक एक जल प्रबंधन पद्धति है।

फौज़ान ज़ोर देकर कहते हैं कि हीटी प्रणाली पहाड़ों–झरनों–बस्तियों–खेतों के बीच संबंध का प्रतीक है, जो एक संतुलित जैविक पर्यावरण पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करती है। काठमांडू के पाटन की तरह ही, इंडोनेशिया में जावानीस हिंदू समुदाय ने भौतिक जल निरंतरता बनाए रखने के अलावा, जल स्थिरता बनाए रखने की लोगों की भावना को समाहित करने के लिए दाऊहान की आध्यात्मिक परंपरा को जारी रखा हुआ है।

फौज़ान लिखते हैं कि यह समझ इंडोनेशिया में जावानीस हिंदू समुदाय द्वारा अपनाई गई हिंदू शिक्षाओं के अनुरूप है, जो इस अवधारणा पर ज़ोर देती हैं कि जीवन जीते हुए, लोगों को सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने के लिए हमेशा मनुष्य–ईश्वर, मनुष्य–मनुष्य और मनुष्य–प्रकृति के बीच मूलभूत संबंध को कायम रखना चाहिए।

काठमांडू की ढूँगे धारा और सेथो का दाऊहान आश्चर्यजनक रूप से एक–जैसे हैं। नेपाल में काठमांडू और इंडोनेशिया में सेथो गाँव की जल प्रणाली दोनों में ही यह समझ निहित है कि मानव जीवन को बनाए रखने के लिए जल स्थिरता महत्वपूर्ण है, और दोनों ही मंदिर के परिसरों में समाहित हैं।

सेथो का दाऊहान इंडोनेशिया के करंगन्यार के सेथो गाँव में स्थित सेथो मंदिर परिसर के साथ जुड़ा हुआ है। सेथो मंदिर क्षेत्र के अंदर हिंदू जावानीस समुदाय की बस्ती एक प्राचीन बस्ती है जो अभी भी लावू पहाड़ की पश्चिमी ढलान पर बसी है। यह बात हिंदू और बौद्ध समुदाय के लिए भी प्रासंगिक है, जो मध्यकालीन इतिहास के दौरान काठमांडू के मणिगाला क्षेत्र में बसे थे।

झरनों के प्राकृतिक प्रवाह की अवधारणा आश्चर्यजनक रूप से एक–जैसी है। सेथो में यह मान्यता है कि प्राचीन काल में, पुंडिसारी झरनों का पानी श्रृंखलाबद्ध रूप से जुड़े बांस के तनों से बने पाइपों के माध्यम से बस्तियों में वितरित किया जाता था। गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का उपयोग करते हुए, जिसमें पानी ऊपर से नीचे की ओर बहता है, पानी बस्तियों के अंदर स्थित कालीबाकू नामक कई जल बिंदुओं तक वितरित किया जाता था। काठमांडू के ढूँगे धारा का सिद्धांत भी यही है।

ऐसी ही दिलचस्प कथाओं के बीच एक और पारंपरिक जल प्रबंधन प्रणाली है, मणिपुर के उत्तरी सेनापति जिले में लियाई खुल्लेन गाँव में। इस गाँव ने भी काठमांडू की हीटी प्रणाली और सेथो की दाऊहान प्रणाली वाला सिद्धांत अपनाया है। स्वच्छ साफ़ पानी जलसेतुओं के माध्यम से बहता है और काठमांडू के ढूँगे धारा जैसे पानी के टैंकों में संग्रहित किया जाता है।

इन प्राचीन मान्यताओं की एक दिलचस्प अवधारणा यह है कि पर्वतीय क्षेत्रों में जलवायु का सबसे ज़्यादा प्रभाव पारंपरिक बस्तियों पर पड़ता है। विशेष रूप से दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में, पारंपरिक बस्तियों के जीवन को सहारा देने में जल सुरक्षा के खतरे की अवधारणा, वर्तमान में भोजन और जल सुरक्षा पर त्रिग्रही संकटों के प्रभावों की चिंता के मुकाबले काफ़ी लंबे समय से मौजूद रही है।

जैसा कि फौज़ान इत्यादि लिखते हैं, बहुत ज़्यादा ढलान वाले पर्वतीय पारिस्थितिक तंत्र पर जलवायु परिवर्तन के ज़्यादा जटिल प्रभाव होते हैं। इनमें से एक प्रभाव है पृथ्वी के वायुमंडल में वर्षा में बदलाव के कारण जल विज्ञान चक्र में होने वाले परिवर्तन। फौज़ान के अनुसार, जल विज्ञान चक्र में होने वाले परिवर्तन क्षेत्रीय पारिस्थितिक तंत्र के संतुलन में बदलाव का कारण बन जाते हैं, जिसमें कृषि उत्पादकता और क्षेत्र लोगों की आजीविका में होने वाले बदलाव शामिल है।

मेलिसा एम. रोहडे इत्यादि. (२०२४) ने फौज़ान इत्यादि. के तर्क का समर्थन करते हुए कहा है कि, जो पारिस्थितिक तंत्र अपनी कुछ या सभी जल आवश्यकताओं के लिए भूजल पर निर्भर होते हैं, उन्हें सामूहिक रूप से भूजल–निर्भर पारिस्थितिकी तंत्र (जीडीई) कहा जाता है, और हालांकि जीडीई कई बायोम में पाए जाते हैं, लेकिन पठारों और शुष्क भूमि में पाए जाने वाले जीडीई सबसे ज़्यादा चिंता का विषय हैं, क्योंकि वहां नमी वाले वातावरण की तुलना में, सतह के पास उपलब्ध पानी की कमी होती है।

काठमांडू और सेथो की जल स्थिरता प्रणालियाँ पारिस्थितिकी तंत्र मूल्यांकन के इस वैज्ञानिक आकलन पर टिकी हैं। इस संदर्भ में, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (२०२१) का कहना है, कि जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र ऐसी पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ देते हैं जो मानव अर्थव्यवस्थाओं और कल्याण के लिए लाभकारी हैं, और जहाँ वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद का आधे से अधिक – २०२१ तक ४४ ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर – मध्यम या अत्यधिक रूप से प्रकृति की सेवाओं पर निर्भर है।

इसी संदर्भ में, विश्व वन्यजीव फंड (२०२१) ने आकलन किया कि आदिवासी लोग और स्थानीय समुदाय (आईपीएलसी) वैश्विक भूमि और संबंधित अंतर्देशीय जल के कम–से–कम ३२ प्रतिशत हिस्से के मालिक हैं और उसका प्रबंधन करते हैं, और माना जाता है कि इसमें से ८० प्रतिशत अभी भी काफ़ी अच्छी स्थिति में हैं। यह, निश्चित रूप से महत्वपूर्ण है, जैसा कि हम काठमांडू की हीटी प्रणाली और सेथो की दाऊहान प्रणाली, और लियाई खुल्लेन के संदर्भ में देख सकते हैं।

स्त्रोत: **https://thefrontiermanipur.com/kathmandus-medieval-water-system-defining-sustainability/**

◆◆

मुला–मुत्ता के भविष्य को कंक्रीट खतरा: पुणे रिवरफ्रंट परियोजना

राहुल सिंह

रिवरफ्रंट परियोजना के कारण मुला–मुत्ता नदी में बाढ़ आने का खतरा बढ़ जाएगा, और यह नदी पहले ही नालों के पानी से भरी हुई है। फ़ोटो: राहुल सिंह

पुणे नगर परिषद मुला–मुत्ता नदी के किनारे ४४ कि.मी. का रिवरफ्रंट विकसित कर रही है। पाँच नदियों – मुला, मुत्ता, रामनदी, देवनदी, और पवना – के संगम से बनी मुला–मुत्ता नदी शहर के बीच से बहती है।

पुणे नदी कायाकल्प परियोजना, जिसे पुणे रिवरफ्रंट विकास परियोजना के नाम से भी जाना जाता है, का उद्देश्य है नदी के तट को कंक्रीट के उपयोग से सुंदर बनाना : नदी के तट पर कंक्रीट के चलने के रास्ते, और छतरियाँ बनाना। इस पर पुणे रिवर रिवाईवल ने विरोध किया है, जो कि निवासियों और पर्यावरण कार्यकर्ताओं का एक संगठन है। उनका तर्क है कि पुणे की भौगोलिक रचना में, जो कि बीच में एक गड्ढे वाला तश्तरी के आकार का शहर है, परियोजना को रिवरफ्रंट बनाने पर ज़ोर नहीं देना चाहिए। इससे नदी के बहाव में रुकावट आएगी।

नदियों की प्राकृतिक संरचना के कारण भूजल स्तर को बनाए रखने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उनके तल और तट आमतौर पर मिट्टी, रेत और चट्टानी परतों जैसे छेद वाले पदार्थों से बने होते हैं जिन्हें एक्वीफ़र्स (जलस्त्रोत) कहा जाता है। कंक्रीट के कारण पानी को ज़मीन के अंदर जाने में मुश्किल होती है, और भूजल भरने में बाधा आती है। पुणे के एक युवा कार्यकर्ता,

अंगद पटवर्धन कहते हैं, रिवरफ्रंट के नाम पर, नदी के किनारों को सीमेंट और कंक्रीट से भरा जा रहा है, जिससे पानी ज़मीन के अंदर जाने की प्राकृतिक प्रक्रिया बाधित हो रही है।

इसके अलावा, विस्तृत परियोजना रिपोर्ट से पता चलता है कि नदी की चौड़ाई कम हो जाएगी – कुछ स्थानों पर १५० मीटर से घटकर मात्र ९० मीटर रह जाएगी – जिससे आसपास के क्षेत्रों में जल स्तर बढ़ जाएगा।

दिनेश कुमार गौतम, अहमदाबाद में साबरमती नदी की सफ़ाई के लिए कार्यरत संस्था, दृष्टि फाउंडेशन ट्रस्ट के संस्थापक हैं। उनका कहना है कि विकास प्रासंगिक होना ज़रूरी है, वे कहते हैं, यह परियोजना अहमदाबाद के साबरमती रिवरफ्रंट की तर्ज पर डिज़ाइन की गई है। लेकिन अहमदाबाद और पुणे की तुलना नहीं की जा सकती, न ही साबरमती और मुला–मुत्ता की। पुणे का भूगोल ऐसा है जहां बाढ़ आने का खतरा बना रहता है, इसलिए इसके नदी के तटों को पक्का नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा करने से, इसके जलीय जीवन, वनस्पतियों और जैव विविधता पर असर पड़ेगा। यही कारण है कि गुजरात के अन्य प्रमुख शहरों, जैसे वडोदरा और सूरत, ने रिवरफ्रंट परियोजनाओं को लागू नहीं किया है।

पुणे के गंदे नालों के कारण नदी का प्रवाह पहले से ही बाधित है, जिससे बाढ़ का खतरा बढ़ रहा है; प्रस्तावित रिवरफ्रंट इसे और भी बदतर बना देगा। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार, गंदे नालों के कारण मुला–मुत्ता नदी महाराष्ट्र की सबसे प्रदूषित नदियों में से एक है। शहर के एक निवासी ने कहा, नदी का पानी गंदा है, और हमारे घर इतने छोटे हैं कि हम पर्याप्त साफ़ पानी भी जमा नहीं कर सकते। मेरे पति मछुआरे हैं, लेकिन नदी में प्रदूषण और कचरे के कारण, उन्हें काम के लिए १५ किलोमीटर दूर पिंपरी–चिंचवड़ जाना पड़ता है।

स्त्रोत: **https://idronline.org/ground-up-stories/a-concrete-threat-to-mula-muthas-future-pune-riverfront-project/**

◆◆

वैश्विक आदिवासी अधिकार समूह का कहना है भारतीय सरकार की ग्रेट निकोबार परियोजना से शोम्पेन आदिवासी खत्म हो जाएंगे

आकांक्षा मिश्र

सरवाईवल इंटरनेशनल की रिपोर्ट चेतावनी देती है कि ग्रेट निकोबार परियोजना से शोम्पेन आदिवासियों का एकांत भंग हो जाएगा, और वे बीमारियों, शोषण और पर्यावरणीय क्षति की चपेट में आ जाएंगे।

शोम्पेन आदिवासी । सरवाईवल इंटरनेशनल

नई दिल्ली: रु.७५,००० करोड़ की ग्रेट निकोबार परियोजना निकोबार के संवेदनशील शोम्पेन आदिवासियों को खत्म करने का खतरा खड़ा कर देगी, ऐसा यू.के. की संस्था सरवाईवाल इंटरनेशनल की एक रिपोर्ट में कहा गया है। हाल में जारी की गई इस रिपोर्ट में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि ग्रेट निकोबार द्वीप पर मेगा–पोर्ट, हवाई अड्डा, रक्षा अड्डे और पर्यटन पार्क बनाने की भारत सरकार की योजना से शोम्पेन जनजाति के लगभग ३०० जीवित सदस्यों को बीमारी, पर्यटन, उत्पीड़न और शोषण का सामना करना पड़ेगा, साथ ही उनके जंगल और जीविका के साधन भी नष्ट हो जाएंगे।

मेरी राय में, ऐसी विशाल मूलभूत सुविधा परियोजनाएं सही नहीं हैं... शोम्पेन भले ही संख्या में कम हों, लेकिन उनके द्वीप के जंगलों के बारे में उनका ज्ञान अद्वितीय है। वो जैसे हैं उन्हें वैसे ही रहने दो, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के पूर्व निर्देशक त्रिलोकनाथ पंडित ने इस रिपोर्ट में कहा है।

सरवाईवाल इंटरनेशनल एक वैश्विक गैर–सरकारी संस्था है जो कि जनजातियों और हाशिये के समुदायों के कल्याण के लिए काम करती है। उन्होंने क्रश्डः हाओ इंडिया प्लान्स टु सेक्रिफ़ाइस वन ऑफ दि वर्ल्ड'ज़ मोस्ट आइसोलेटेड ट्राइब्स टु क्रिएट दि न्यू हाँग काँग शीर्षक की रिपोर्ट जारी की। इस रिपोर्ट को नस्लीय भेदभाव खत्म करने के लिए नियुक्त की गई संयुक्त राष्ट्र कमिटी के सामने पेश करने के लिए संकलित किया गया था।

समाचार खबरों, विशेषज्ञों की गवाही, और दि ग्रेट निकोबार परियोजना पर भारत सरकार की खुद की पर्यावरणीय प्रभाव आकलन रिपोर्ट का हवाला देते हुए, सरवाईवल इंटरनेशनल का प्रयास था कि जागरूकता बढ़े और भारत सरकार से अनुरोध किया जाए कि वह इस परियोजना को तुरंत रद्द कर दे।

२०२२ में भारतीय संस्थान द्वारा किए गए पर्यावरणीय प्रभाव आकलन का हवाला देते हुए, इस रिपोर्ट में कहा गया है कि सरकार को पता है कि 'शोम्पेन आदिवासियों के 'प्राकृतिक पर्यावरण में कोई भी गड़बड़ी' उनके अस्तित्व को खतरे में डाल देगी। वर्तमान में, ग्रेट निकोबार द्वीप में ५०० से भी कम निवासी हैं। प्रस्तावित परियोजना का लक्ष्य है इस संख्या को ८,००० प्रतिशत बढ़ाकर ६,५०,००० स्थायी निवासी वहाँ पर बसाना।

लेकिन इसके बावजूद, सरकार इस परियोजना को बना रही है।

शोम्पेन जनजाति

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह कई अज्ञात जनजातियों का घर है जिसमें जरावा, सेंटिनली और शोम्पेन शामिल हैं। ये समूह भारत के साथ–साथ, बाकी दुनिया से काफी हद तक अलग–थलग रहे हैं, जिससे बाहरी लोगों के संपर्क में आने से उनमें बीमारियों का खतरा बहुत ज़्यादा है।

शोम्पेन जनजाति, जिसमें केवल ३०० के करीब लोग बचे हैं, को भारत सरकार ने विशिष्ट संवेदनशील जनजाति समूह घोषित किया है। वे शिकार और जंगल से खाद्य पदार्थ इकट्ठा करके अपना गुज़ारा करते हैं और वे ग्रेट निकोबार द्वीप के मूल निवासी हैं – ठीक वहीं जहां एक विशाल परियोजना अब उनके पारिस्थितिकी तंत्र, वनस्पति और जीवों के लिए खतरा बनी खड़ी है, और इसके परिणामस्वरूप मुख्यभूमि भारत से ६००,००० लोग वहाँ आकार बसने वाले हैं।

रिपोर्ट में नरसंहार इतिहासकार डॉ. मार्क लेवेन का हवाला देते हुए कहा गया है, शोम्पेन लोगों का अस्तित्व बाहरी लोगों से उनके अलग रहने पर निर्भर करता है। विकास परियोजना के कारण उनका मानसिक पतन और धीमी गति से मौत होगी।

शोम्पेन जनजाति को सिर्फ पर्यावरणीय क्षति और नई बीमारियों का ही खतरा नहीं है। इनके कई लोग कई सदियों से जीवित हैं क्योंकि उनका बाहर से कोई संपर्क नहीं था, और उनका रहन–सहन मुख्यभूमि के लोगों से बहुत ज़्यादा अलग है। रिपोर्ट में चेतावनी दी गई है कि ग्रेट निकोबार द्वीप में पर्यटकों की संख्या बढ़ाने से, शोम्पेन जनजाति के लिए नस्लीय भेदभाव और उत्पीड़न का खतरा बहुत ज़्यादा बढ़ जाएगा।

रिपोर्ट में लिखा है, यह भी खतरा है कि लोग शोम्पेन लोगों को देखने ह्यूमन सफारी पर आने लगें, जैसा कि पड़ोस में अंडमान द्वीपों में आंग (जिन्हें पहले जरावा के नाम से जाना जाता था) के साथ हुआ।

अंतर्राष्ट्रीय कानूनों का उल्लंघन

सरवाईवल इंटरनेशनल का कहना है, चूंकि शोम्पेन जनजाति अज्ञात रहे हैं, इसलिए ग्रेट निकोबार परियोजना के संदर्भ में उनसे उनकी स्वतंत्र, पूर्व, एवं सूचित सहमति लेने का कोई प्रयास नहीं किया गया। उनकी सहमति के बिना आगे बढ़ने का मतलब है कि यह परियोजना जनजातीय लोगों के अधिकार पर संयुक्त राष्ट्र उद्घोषणा, और साथ ही हर प्रकार के नस्लीय भेदभाव को मिटाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संधि का उल्लंघन करेगी – और भारत ने इन दोनों पर ही हस्ताक्षर किए हैं।

रिपोर्ट में भारत सरकार से ग्रेट निकोबार द्वीप पर ७५,००० करोड़ रुपये की विकास परियोजना को रोकने का स्पष्ट आह्वान किया गया है। साथ ही, इस क्षेत्र को जनजातीय आरक्षित क्षेत्र घोषित करने और शोम्पेन जनजाति के मूल अधिकारों को बहाल करने की भी सिफ़ारिश की गई है।

स्त्रोत: **https://theprint.in/environment/global-indigenous-rights-group-says-indian-govts-great-nicobar-project-will-annihilate-shompen-tribe/2590929/**

✦✦

२. दृष्टिकोण

पारिस्थितिकीय पुनर्जनन के लिए एक छोटी–सी कोशिश

अर्जुन सिंह

अगर हमें बड़ी संख्या में देशी प्रजातियों को वापस लाना है, तो हम उन्हें पैदा करने की शुरुआत कैसे करेंगे?

ज़मीन की गुणवत्ता बिगड़ना एक गंभीर समस्या है जो दुनिया भर के देशों को प्रभावित कर रही है। भारत ने बॉन चैलेंज के तहत २.६ करोड़ हेक्टेयर बंजर भूमि को पुनर्स्थापित करने का संकल्प लिया है। पारिस्थितिक पुनर्स्थापन परियोजनाओं में स्थानीय पौधों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। ये ऐसे पौधे होते हैं जिनका उस क्षेत्र में पाए जाने वाले स्तनधारियों, पक्षियों, कीड़ों और कवकों के साथ जटिल संबंध स्थापित है। इसके अलावा, उन्होंने मिट्टी की परिस्थितियों और यहाँ तक कि उस क्षेत्र की जलवायु परिस्थितियों के उतार–चढ़ाव से भी निपटना सीख लिया है, और एक बार वहाँ स्थापित हो जाने के बाद, उन्हें पानी देने, उर्वरक या किसी अन्य मानवीय हस्तक्षेप की ज़रूरत नहीं रहती। जलवायु से प्रभावित न होने वाले प्राकृतिक पारिस्थितिकीय तंत्र और भूदृश्य बनाने की दिशा में ये सबसे अच्छा विकल्प है। इनमें से बहुत सी ज़मीनों पर देशी पौधे कम हैं, और कई जगहों पर व्यवस्थित तरीके से पुनः पौधरोपण से पारिस्थितिकीय तंत्र को पुनर्स्थापित करने और संतुलन वापस लाने में मदद मिल सकती है। पौधे हज़ारों बीज पैदा करते हैं, लेकिन एक बीज के स्वस्थ परिपक्व पौधा बनने की संभावना १०० में से १ होती है, क्योंकि उन्हें फलने–फूलने के लिए सही जलवायु परिस्थितियाँ और पारिस्थितिक स्थान प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। यह पहले से स्थापित पारिस्थितिकीय तंत्रों के लिए तो काम कर जाता है, लेकिन क्षतिग्रस्त भू–दृश्यों को पुनर्स्थापित करते समय, हर–एक बीज महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि बड़े पैमाने पर रोपण करना होता है।

इसलिए ज़रूरी है कि इन बीजों से पौधे बनाने के लिए सही परिस्थितियों के बारे में विश्वसनीय जानकारी हो। अप्रैल २०२३ की बात है, जब औरोविल बोटैनिकल गार्डन के निर्देशक और इकोलॉजीकल रेस्टोरेशन अलायंस–इंडिया की स्टिरिंग कमिटी के सदस्य पॉल ब्लान्चफ्लॉवर को विचार आया कि भारत के विभिन्न देसी प्रजाति की अंकुरण प्रक्रिया का ओपन सोर्स डेटाबेस बनाया जाए। औरोविल बोटैनिकल गार्डेन्स पहले से ही उन पौधों का डेटाबेस बनाने पर काम कर रहा था, जिन्हें वे उगाते हैं। लेकिन, डेटा एंट्री और संकलन करना काफी पेंचीदा काम हो सकता है। अगस्त २०२३ तक एक ठोस तरीके की योजना तैयार कर ली गई, और इस विचार को मासिक सामुदायिक बैठकों के ज़रिए समुदाय के अन्य लोगों के साथ साझा किया गया।

इसका संदेश बाकी लोगों तक पहुँचाने के लिए सदस्यों के व्हाट्सऐप ग्रुप, ईमेल और समाचारपत्रों में भी जानकारी भेजी गई। सितंबर २०२३ के लिए एक कॉल तय की गई जिससे कि जो लोग इस योजना में सहयोग देने के इच्छुक हों, उनसे सबको मिलवाया जा सके। एक बेस शीट से शुरुआत की गई थी, और उसमें कॉल पर मिले सुझावों के आधार पर बदलाव किए गए और उन्हें एक साझी गूगल शीट में शामिल किया गया।

उसके बाद नवंबर २०२३ तक यह समूह एक–दो बार मिल, और उन्हें आशा थी कि रिस्टोरिंग नेचुरल इकोलोजीज़ कान्फ्रन्स में बाकी समुदाय के साथ उसका शुरुआती प्रारूप साझा करेंगे। लेकिन दुर्भाग्यवश, उस शीट को उपयोग लायक बनाने के लिए उस पर और काम करना ज़रूरी था। अंकुरण डेटाबेस धीरे–धीरे तैयार हो रहा था, और इस बीच मार्च २०२४ में, ईआरए–भारत के मासिक वेबिनारों के दौरान, विश्वसनीय अंकुरण डेटाबेस की आवश्यकता पर हो रही चर्चा ने गौरव मेहता का ध्यान आकर्षित किया, जो कि डीसीबी बैंक के विपणन, पीआर, कॉर्पोरेट संचार और सीएसआर प्रमुख हैं। और उन्होंने इस परियोजना के लिए सहयोग दिया। इस सहयोग का मतलब था कि एक व्यक्ति अलग से इस काम में जोड़ा जा सकता था, जो समुदाय से इकट्ठी की गई जानकारी को संकलित करे, और विभिन्न प्रकाशनों में अंकुरण के जीतने भी तरीके दिए हुए थे, उन्हें डिजिटाइज़ करे। इससे अंतिम परिणाम की और बेहतर रूपरेखा बन सकती थी और इसे ज़्यादा लोगों तक पहुंचाया जा सकता था।

बीज अंकुरण डेटाबेस की ताकत गठबंधन के सदस्यों, नर्सरी प्रबंधकों, पुनर्स्थापन कार्यकर्ताओं और देशी पौधों के प्रति उत्साही लोगों द्वारा अंकुरण के अपने अनुभव को सार्वजनिक मंच पर साझा करने से आती है जिससे कि अधिक से अधिक लोग लाभान्वित हो सकें और सीख सकें। इसके अतिरिक्त, यह बंजर भूमि के बड़े हिस्से में पारिस्थितिक पुनर्स्थापन की प्रक्रिया में भी मदद करता है।

बीज अंकुरण डेटाबेस एक ऐसी प्रक्रिया का पहला उदाहरण है जो एक विचार से शुरू हुई, मासिक सामुदायिक कॉल तक गई, कुछ समर्थकों और योगदान देने वालों ने मिलकर इसे साकार किया, और इस प्रयास का नेतृत्व करने वाले संगठन को अंततः अतिरिक्त समर्थन मिला, जिससे डेटाबेस को अधिक सुलभ बनाया गया और अंततः इसे प्लेटफॉर्म पर प्रकाशित किया गया।

यह परियोजना इन लोगों के योगदान के कारण संभव हुई: अभिषेक घोष, अबिनया रविचंद्रन, अजय गुप्ता, अपर्णा वटवे, अरुणा गामुज़, आसिया खान, अतिन चटर्जी, दीया बनर्जी, फज़ल राशिद, कार्तिकेय शर्मा, किरण बाल्डविन, क्षमा भट्ट, मकरंद दातार, नैना कुमार, नूपुर बोरावके, पद्मावती द्विवेदी, पॉल ब्लैंचफ्लॉवर, प्रिया भिड़े, सागर दातिर, सयाली एस, सोमिल डागा, विजय कुमार एस, विनोद शंकर, और विवेक अवस्थी।

डेटाबेस के वर्तमान संस्करण में अनानास नर्सरी, ऑरोविल बोटेनिकल गार्डन, वन एवं वन्यजीव विभाग– दिल्ली, ग्रासलीला, प्रांजल नर्सरी, राव जोधा डेजर्ट रॉक पार्क, संगम, द फॉरेस्ट वे, यूपीवीएचए और उत्तरायण वन्यजीव से प्राप्त बीज अंकुरण विधियाँ शामिल हैं। बीज अंकुरण डेटाबेस बनाने के लिए डीसीबी बैंक ने सहयोग किया। इस डेटाबेस में कुल १००० से ज़्यादा प्रविष्टियाँ हैं और लोग इसका उपयोग ४६५ से ज़्यादा प्रजातियों के अंकुरण के लिए कर सकते हैं।

स्त्रोत: **https://era-india.org/blog/a-little-push-for-ecological-restoration-by-arjun-singh/**

◆◆

पारिस्थितिकीय तंत्र की तरह सोचना

सीता अनंतशिवन

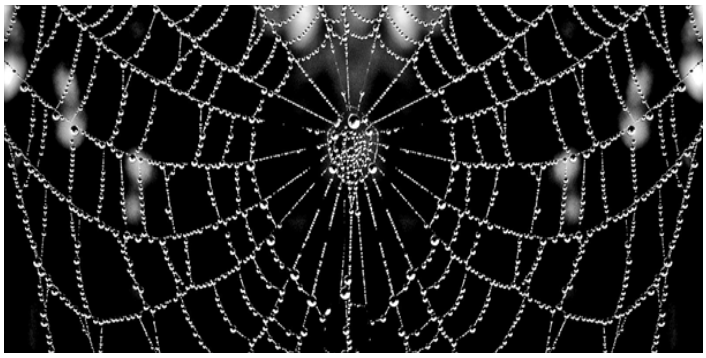

फोटो: माइक राऊबे–बोयेर (फ्लिकर) के सौजन्य से

सतत जीवन हमेशा भारी–भरकम नहीं होता। हम एक ज़्यादा समझदार और टिकाऊ सभ्यता तब बन पाएंगे जब हम प्रकृति से फिर से प्यार करना सीखेंगे। जब हम पेड़–पौधों, भिनभिनाती मधुमक्खियों और अनगिनत जीवों की दुनिया का हिस्सा बनना सीखेंगे, जो अपना जीवन जीते हैं – हम इंसानों से कहीं ज़्यादा खुशी से!

हर प्रजाति और पारिस्थितिकी तंत्र पृथ्वी पर उभरता है, और कुछ सिद्धांतों का पालन करते हुए विकसित होता है। कभी–कभी प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं या खुद को अलग तरीके से भी ढाल लेती हैं।

मनुष्य पृथ्वी पर केवल २० लाख वर्षों से ही हैं – अगर आप उस समय से गिनती शुरू करते हैं जब हमने पैरों पर खड़े हो कर चलना शुरू किया और खुद को होमो इरेक्टस का नाम दिया। पृथ्वी की रचना लगभग ४६० करोड़ वर्ष पहले हुई, और इस पर जीवन का आगमन लगभग ३५० करोड़ वर्ष पहले शुरू हुआ।

अगर मनुष्य केवल २० लाख वर्ष पहले ही पृथ्वी पर आए, प्रकृति मनुष्य के आने से ३,४९८,०००,००० वर्ष पहले से जीवन का विकास कर रही है! और हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि प्रकृति ने हमें बनाया है – हम प्रकृति का हिस्सा हैं और हम ही प्रकृति भी हैं।

अगर प्रकृति ने अपने पारिस्थितिकीय तंत्रों के साथ इतने लंबे अरसे से पृथ्वी पर जीवन कायम रखा – उसके नियम, जीवन को बनाए रखने के उसके सिद्धांत असल में सीखने के लिए सबसे महत्वपूर्ण चीजें होनी चाहिए। लेकिन अजीब बात है कि हमें स्कूल या कॉलेज में प्रकृति के सिद्धांतों के बारे में ज़्यादा कुछ नहीं सिखाया जाता। यह एक बहुत बड़ा अलगाव है!

प्रकृति – जो हमें हमारे जीवन का संदर्भ प्रदान करती है – के सिद्धांतों को जानने और उनके अनुसार जीने की उपेक्षा करके हमने अपने लिए कई पारिस्थितिक संकट पैदा कर लिए हैं – जलवायु परिवर्तन, पानी की कमी, भूमि, वायु और जल का प्रदूषित होना और शहरों में लोगों की भीड़भाड़ जो हमारे संसाधनों का अंधाधुन उपभोग कर रही है। जब हम किसी स्कूल, कॉलेज, संस्था या समुदाय में जाते हैं तो हमें वहाँ के नियम सीख कर उनका पालन करना होता है। यहाँ तक कि परिवार में भी कुछ अलिखित कायदे होते हैं जिनके अनुसार हमें जीना पड़ता है। तो क्या हमें प्रकृति के सिद्धांतों की भी एक साझा समझ नहीं बनाई चाहिए जिससे कि बच्चे भी समझ सकें कि हमें पारिस्थितिक ज्ञान के साथ कैसे जीना है?

पूरी प्रकृति, सभी परिस्थितिकीय तंत्र एक जैसे सिद्धांतों का पालन करते हैं – और हमारे शरीर भी पारिस्थितिकीय तंत्र होते हैं – अपने लिए देखने और समझने की सबसे आसान जगह। ज़रूरत यह है कि हम पारिस्थितिकीय तंत्र की तरह सोचें – लेकिन इतने शतकों से प्रकृति से अलगाव होते–होते हम में से ज़्यादातर लोगों के लिए प्रकृति की तरह सोचना मुश्किल हो चुका है। लेकिन यह संभव है – शुरुआत करने का सबसे अच्छा तरीका है कि हम ज़्यादा से ज़्यादा समय जंगलों, जलाशयों, खेतों या आसमान, पेड़ों और जानवरों को देखते हुए बिताएं। एक दूसरा तरीका है पारिस्थितिकीय तंत्र या प्रकृति के सिद्धांतों या पहलुओं को समझना, जैसे कि विविधता, संसाधनों और ऊर्जा का निरंतर प्रवाह, आपस में जुड़ाव, अनंतता, रहस्य और कितना कुछ।

प्रकृति में विविधता है – हमारे शरीरों में हज़ारों तरह की कोशिकाएं और हज़ारों प्रकार के बैक्टीरीया होते हैं। क्या हम विविधता को स्वीकार करके उसे महत्व दे सकते हैं – हमारे मस्तिष्क, हमारे परिवारों, कक्षा और समाज में? जिस खेत में सिर्फ एक फसल उगाई जाती है, वहाँ की ज़मीन कुछ दशकों या उससे भी कम समय में खराब हो जाती है, जबकि जिस ज़मीन पर पौधों और पेड़ों के साथ–साथ कीड़ों, पक्षियों और अन्य प्राणियों की विविधता होती है, वह पनपता है और वहाँ समृद्ध जीवन होता है।

प्रकृति हमेशा प्रवाह में रहती है – ऊर्जा का प्रवाह, संसाधनों का प्रवाह, विचारों और भावनाओं का प्रवाह। जब तक प्राणी या जीव में जीवन है तब तक प्रवाह, संचार, रिश्ते कायम रहते हैं। चक्रीय प्रवाह और स्व–नियमन के प्रवाह होते हैं।

जीवन चीज़ों और वस्तुओं के मुकाबले कहीं अधिक प्रक्रियाओं के बारे में है। जब हम अपने अंदर और आपस में तथा दूसरे लोगों और पारिस्थितिकीय तंत्रों में इस प्रवाह का सम्मान करते हैं, तो हम जीवन में और ज़्यादा जीवंतता अनुभव करते हैं; हम ज़्यादा स्वस्थ और खुश महसूस करते हैं।

प्रकृति का एक और सिद्धांत है एक–दूसरे से जुड़ाव, जो प्रवाह से नज़दीकी से जुड़ा हुआ है। शरीर की हर कोशिका दूसरी कोशिकाओं से जुड़ी रहती है। अगर हमारे एक पैर में बहुत दर्द हो, तो पूरे शरीर को पता होता है और वह प्रतिक्रिया करता है। कभी–कभी सिर्फ एक प्रजाति के मारे जाने से या किसी विदेशी प्रजाति को लाए जाने से पूरे पारिस्थितिकीय तंत्र में तबाही मच सकती है। हमारे शरीर में कई कि.मी. लंबी खून और लिम्फ वाहिकाएं और नसें होती हैं जो आपस में जुड़कर शानदार काम करती हैं। हमारे मस्तिष्क–मन भी अद्भुत जुड़ाव बनाने के लिए सक्षम होते हैं। जब हम अपने आस–पास के लोगों, प्रकृति और अन्य प्राणियों के साथ जुड़ते हैं तो वे हमें बेहतर कल्याण का अनुभव करने में मदद करते हैं।

प्रकृति ऊर्जा है – संभावित और गतिज दोनों तरह की ऊर्जा। हमारे पूरे जीवन में, चौबीसों घंटे, हमारे पूरे शरीर, उसकी हर कोशिका में ऊर्जा का प्रवाह रहता है। जब हम जीवित होते हैं, तो हमारे पास चलने–फिरने, खाने–पीने और कई काम करने के लिए ऊर्जा होती है। जब हम मर जाते हैं, तो गतिशील रहने की यह ऊर्जा चली जाती है, लेकिन हम विघटित हो कर धरती में वापस समा जाते हैं और या तो पौधों को खनिज प्रदान करते हैं या अन्य जीवों का भोजन बन जाते हैं। इसी तरह, हमारे द्वारा बनाए गए समूहों और संगठनों में भी, हमें प्रकृति से यह सीखने की ज़रूरत है कि ऊर्जा को कैसे जीवित रखा जाए – ऊपरी तबके के मुनाफ़े के लिए नहीं, बल्कि सभी की भलाई के लिए!

प्रकृति अनंत भी है, रहस्यमयी भी और हम कभी भी पूरी तरह से उसे जान नहीं पाएंगे – इसलिए हम इसे पवित्र भी कह सकते हैं। हमारे शरीर में ३ लाख करोड़ कोशिकाएँ और ३० लाख करोड़ बैक्टीरिया हैं। हमें अभी तक पूरी तरह से यह नहीं पता कि हमारा शरीर कैसे काम करता है – लेकिन प्रकृति के सिद्धांतों का पालन न करके हमने इसे बहुत बिगाड़ दिया है! दुर्भाग्य से, सभी मानवीय आविष्कारों और खोजों ने मनुष्य को बहुत ज़्यादा अहंकारी बना दिया है। हमें फिर से यह समझना होगा कि हज़ारों सालों से चली आ रही सभ्यताओं में प्रकृति को पवित्र मानने की संस्कृति कूट–कूट कर भरी है। हम भारतवासी सौभाग्यशाली हैं कि हमारे पास ऐसी संस्कृति है – तो आइए, प्रकृति और धरती माँ के प्रति पवित्रता की भावना को हम पुनः जीवित करें!

प्रकृति इतनी जटिल है कि कई लोग उसके सिद्धांतों को अलग–अलग तरीके से समझाते हैं। और समझने के लिए अभी बहुत कुछ बाकी भी है – इसलिए यह सिद्धांतों का एक संपूर्ण, सुव्यवस्थित समूह नहीं है, बल्कि हमें अपने जीवन की पुनर्कल्पना और पुनर्रचना करने में आसानी से मदद कर सकता है, अगर हम प्रकृति के साथ सामंजस्य के साथ जीना चाहते हैं।

खुद की एक पारिस्थितिकीय तंत्र और उसके एक हिस्से के रूप में कल्पना करना – यह एक अच्छा तरीका है जिसके माध्यम से हम जीवन का आनंद और शांतिपूर्ण तरीके से अपने जीवन को स्वीकार कर सकते हैं। बस हर दिन कुछ समय बिताएँ – पक्षियों की चहचहाहट सुनें, कीड़ों को अपने काम करते हुए देखें या पालतू जानवरों या छोटे बच्चों के साथ खेलें। हम उनसे एक पारिस्थितिकीय तंत्र की तरह सोचने और जीने के बारे में बहुत कुछ सीख सकते हैं – जिसका मतलब है अपने ग्रह पर सतत रूप से ज़िंदगी जीना।

स्त्रोतः **https://bhoominetwork.org/article/thinking-ecosystem**

◆◆

विचारों की लहरें: समुद्री जैवक्षेत्रवाद में विज्ञान और आत्मा का एकीकरण

जॉन कुरियन, डी. नंदकुमार और नलिनी नायक

जहाँ पश्चिमी दृष्टिकोण अक्सर तट और महासागर के क्या और कैसे पर केंद्रित होते हैं, वहीं पूर्वी दृष्टिकोण में क्यों पर ज़ोर दिया जाता है – जो प्रत्यक्ष से परे गहरे अर्थ और आध्यात्मिक महत्व रखता है। इस लेख में, लेखक प्रस्तावित करते हैं कि इन दोनों दृष्टिकोणों – अनुभव आधारित ज्ञान और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि – को मिला कर देखने से समुद्री जैव–क्षेत्रवाद के लिए एक ऐसा आख्यान तैयार होता है जो वैज्ञानिक रूप से ध्यान देने योग्य होने के साथ–साथ भावनात्मक रूप से भी समझ आने लायक है।

दक्षिण एशिया जैवक्षेत्रवाद कार्य समूह के लिए समुद्री जैवक्षेत्रवाद पर लेख लिखते समय, जिसका शीर्षक था वेबिंग ए न्यू नेट १ हमने तट के बारे में कार्ल सफीना के एक रोचक सूत्र से शुरुआत की।

सफीना लिखते हैं, तट एक ऐसी जगह है जहां पर काफ़ी उथल–पुथल रहती है... इसमें ज्वार भी है और नखरे भी; ताजे और खारे पानी के बीच छेड़खानी... सागर के साथ तनावपूर्ण बातचीत... (तट) ताकत और कभी–कभी भयानक सुंदरता से भरा होता है। तट युवा, साहसी होता है और आने वाले कल के बारे में अनिश्चित।

सफीना के शब्द भूमि और समुद्र के बीच गतिशील अंतर्क्रिया को दर्शाते हैं – जहां निरंतर परिवर्तन, तनाव और अनिश्चितता बनी रहती है, जो कि परिवर्तन और अंतर्क्रिया के सार को प्रत्यक्ष रूप देता है।

इसके बाद हमने अपने लेख की शुरुआत पीटर बर्ग के निबंध बायोरीजनल कल्चरल अवेयरनेस से लिए गए एक उद्धरण से की, जिसमें उन्होंने लिखा है, इस ग्रह पर सभी जीवन एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं.... जीवित चीजों और उन्हें प्रभावित करने वाले कारकों के बीच एक विशिष्ट अनुनाद है.... उस अनुनाद की खोज करना और उसका वर्णन करना ही जैव–क्षेत्र का वर्णन करने का एक तरीका है।

बर्ग का चिंतन हमें मूर्त से अमूर्त की ओर ले जाता है, और सुझाव देता है कि किसी जैव–क्षेत्र का सार केवल उसके भौतिक गुणों में ही नहीं, बल्कि सभी जीवों और उनके वातावरण के बीच परस्पर जुड़ाव और अनुनाद में निहित है। उस अनुनाद की खोज महत्वपूर्ण है।

ये दो विचार – सफीना का जीवंत, गतिशील तट और बर्ग का आपस में जुड़े अनुनाद को पहचानने का आह्वान – हमें इस बारे में और गहराई से सोचने के लिए आमंत्रित करते हैं कि विभिन्न सांस्कृतिक परंपराएँ तट और समुद्र को किस प्रकार से देखती हैं और ये धारणाएँ समुद्री जैव–क्षेत्रीयता की हमारी समझ को कैसे

ज्वार और नखरे का स्थान। चित्र: जॉन कुरियन ।

प्रभावित कर सकती हैं। तट, अपनी तनावपूर्ण बातचीत और भयानक सुंदरता के साथ, केवल एक भौतिक स्थान नहीं है; यह विभिन्न व्याख्याओं – वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, वर्णनात्मक और रूपकात्मक – का मिलन स्थल है।

इसके जवाब में, हमने दुनिया भर के लेखकों के कुछ ग्रंथों, कविताओं और कथनों का, बिना किसी तरह का विशेष चुनाव किए, अध्ययन करने का निर्णय लिया। हमें तुरंत ही पश्चिमी और पूर्वी दृष्टिकोणों के बीच एक स्पष्ट अंतर देखा। पश्चिमी लेखक अक्सर समुद्र की भौतिकता पर ज़ोर देते हैं, जबकि पूर्वी लेखक इसके आध्यात्मिक और रूपकात्मक महत्व पर। यह भिन्नता संभवतः व्यापक सांस्कृतिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक संदर्भों के कारण मौजूद है। हालाँकि, यह उन विशिष्ट तरीकों को भी दर्शाता है जिनसे ये समाज समुद्र का अनुभव करते हैं और उससे जुड़ते हैं।

विचारों की लहरें

पश्चिमी लेखक, विशेष रूप से प्रकृतिवाद, रूमानियत और आधुनिक विज्ञान में निहित परंपराओं से जुड़े लेखक, अक्सर वर्णनात्मक और अनुभव आधारित दृष्टिकोण अपनाते हैं। उनके लिए, तट और महासागर ऐसी मूर्त वास्तविकताएँ हैं जिनकी खोज, अध्ययन और दस्तावेजीकरण किया जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण ज्ञानोदय के तर्क, खोज और प्राकृतिक जगत को वर्गीकृत करने के आदर्शों पर आधारित है।

रेचल कार्सन, हेनरी बेस्टन और कार्ल सफीना जैसे लेखक तटीय और समुद्री वातावरण की पारिस्थितिक गतिशीलता पर ज़ोर देते हैं, जो पर्यावरणीय जागरूकता और वैज्ञानिक समझ पर आधारित संरक्षण के आह्वान को दर्शाता है। उनका दृष्टिकोण सफीना के तट के वर्णन को प्रतिबिंबित करता है – युवा, साहसी, और प्राकृतिक दुनिया के स्वरूपों और परिवर्तनों को ध्यान से अध्ययन करने पर आधारित।

इसके विपरीत, पूर्वी लेखक–खासकर एशियाई, मध्य पूर्वी और स्वदेशी परंपराओं के लेखक – अक्सर समुद्र को व्यापक अस्तित्ववादी, आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों के रूपक के रूप में इस्तेमाल करते हैं। समुद्र अज्ञात, अनंत या दिव्य का प्रतीक बन जाता है – आत्मा के आंतरिक परिदृश्य या अस्तित्व के रहस्यों का प्रतिबिंब।

टैगोर, कमला दास, रूमी, खलील जिब्रान और ए.के. रामानुजम जैसे लेखक अक्सर प्रकृति के भौतिक गुणों से आगे बढ़कर एकता, स्वतंत्रता और दिव्य के विषयों की खोज करते हैं। उनकी रचनाओं में, समुद्र केवल वर्णन का विषय नहीं है, बल्कि एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से गहन आध्यात्मिक सत्यों को व्यक्त किया जाता है। यह बर्ग के जीवों के बीच परस्पर अनुनाद के विचार से मेल खाता है, जहाँ समुद्र गहन, सार्वभौमिक संबंधों और सत्यों का प्रतीक बन जाता है।

समुद्र तट – एक ऐसी जगह जहाँ अनुभवजन्य ज्ञान और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि एक साथ रह सकते हैं। चित्र: जॉन कुरियन ।

जहाँ पश्चिमी दृष्टिकोण अक्सर तट और महासागर के क्या और कैसे पर केंद्रित होते हैं, वहीं पूर्वी दृष्टिकोण क्यों में गहराई से उतरते हैं – जो प्रत्यक्ष से हट कर गहरे अर्थ और संबंध को समझने की कोशिश करते हैं। हालाँकि, कुछ जगहों पर ये दृष्टिकोण एक–दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। वर्णनात्मक दृष्टिकोण आध्यात्मिक दृष्टिकोण की ओर ले जा सकता है। यह थोरो या एल्डो लियोपोल्ड की रचनाओं में देखा जा सकता है, रूपकात्मक दृष्टिकोण प्रकृति की गहन समझ में निहित हो सकता है, जैसा कि स्वदेशी मौखिक परंपराओं में मौजूद है। उदाहरण के लिए, ओन्गे, ग्रेट अंडमानी और निकोबारी आदिवासियों की समुद्री देवताओं और आत्माओं की कहानियाँ आध्यात्मिक विश्वदृष्टि और ज्वार–भाटे, ऋतुओं और समुद्री जीवन के अनुभवजन्य ज्ञान, दोनों को दर्शाती हैं। इसी प्रकार, प्राचीन तमिल संगम साहित्य ' नीथल ' (तटीय) भू–दृश्य का ऐसा वर्णन करता है जिसमें काव्यात्मक रूपकता और अनुभवजन्य सटीकता, दोनों शामिल है।

दोनों दृष्टिकोण मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। दोनों को साथ मिलाकर देखा जाए, तो वे तट और महासागर की ज़्यादा व्यापक समझ बनाने में मदद करते हैं, जिसमें उनकी मूर्त, भौतिक

वास्तविकताओं और अमूर्त, आध्यात्मिक महत्व, दोनों की समझ शामिल है। तट, अपनी तनावपूर्ण बातचीत और अंतर्संबंधित अनुनाद में, एक ऐसी जगह बन जाता है जहाँ अनुभवजन्य ज्ञान और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि सह–अस्तित्व में रह सकते हैं और एक–दूसरे को सूचित कर सकते हैं।

विज्ञान और आत्मा का एकीकरण

इन दृष्टिकोणों का सम्मिश्रण समुद्री जैव–क्षेत्रवाद के प्रति ज़्यादा समग्र दृष्टिकोण का निर्माण करता है, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म का एकीकरण होता है। पश्चिमी, विज्ञान–आधारित दृष्टिकोण समुद्री संरक्षित क्षेत्रों (एमपीए), सतत मत्स्य पालन और प्रदूषण नियंत्रण जैसी डेटा–आधारित रणनीतियों पर ज़ोर देते हैं, जो समुद्री पारिस्थितिक तंत्रों को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। वहीं, पूर्वी दृष्टिकोण इसमें एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आयाम जोड़ते हैं, जो समुद्र को एक जीवित इकाई के रूप में देखते हैं जिसके साथ मनुष्यों का पारस्परिक संबंध है। इन दृष्टिकोणों का सम्मिश्रण संरक्षकता की एक गहरी भावना को बढ़ावा देता है, जहाँ संरक्षण एक पारिस्थितिक ज़रूरत और नैतिक कर्तव्य दोनों बन जाता है। स्थानीय पारिस्थितिक ज्ञान को वैज्ञानिक विशेषज्ञता के साथ एकीकृत करने के प्रयासों को अक्सर स्थानीय समुदायों से बेहतर समर्थन और स्थिरता मिलती है।

यह मिश्रित दृष्टिकोण समावेशी आख्यान और नीतियाँ बनाने पर भी लागू होता है। पश्चिमी लेखकों के विस्तृत विवरण नीतिगत बदलावों के लिए प्रभावी रूप से पैरवी कर सकते हैं, जबकि पूर्वी रूपकात्मक दृष्टिकोण व्यापक सांस्कृतिक बदलावों और जुड़ाव को प्रेरित कर सकते हैं। सफीना के तट की तनावपूर्ण बातचीत को बर्ग के जैवक्षेत्रवाद के अंतर्संबंधित अनुनाद के साथ जोड़कर, हम समुद्री जैव–क्षेत्रवाद के लिए एक ऐसा आख्यान रच सकते हैं जो वैज्ञानिक रूप से आकर्षक और भावनात्मक रूप से प्रतिध्वनित हो।

शिक्षा और लोक जागरूकता में, अनुभवजन्य पाठों को अनुभवात्मक, कहानी–आधारित शिक्षा के साथ मिलाने से तटीय पारिस्थितिक तंत्रों की बेहतर समझ मिलती है। इसी प्रकार, समुद्री और तटीय स्थानिक नियोजन में वैज्ञानिक समझ और पवित्र सांस्कृतिक परिदृश्यों, दोनों को पहचानने और पारिस्थितिक और आध्यात्मिक मूल्यों को एकीकृत करने से लाभ मिल सकता है।

महासागर गहरे, सार्वभौमिक संबंधों और सत्यों का प्रतीक बन जाता है। चित्र: जॉन कुरियन ।

कुल मिलाकर, समुद्री जैव–क्षेत्रवाद के प्रति यह सह–विकासवादी दृष्टिकोण व्यावहारिक प्रबंधन को देखभाल की नैतिकता के साथ जोड़ता है, जिससे संरक्षण पद्धतियाँ और ज़्यादा अनुकूल और सांस्कृतिक रूप से अनुनादित बनती हैं। यह समुद्री जैव–क्षेत्रवाद की गहन वैचारिक स्पष्टता के लिए ज़रूरी अनुनाद की खोज की दिशा में एक संतुलित और समावेशी मार्ग प्रदान करता है। हमारा मानना है कि तट के ज्वार और आवेश और परस्पर जुड़े जीवन के विशिष्ट अनुनाद दोनों को स्वीकार करके, हम समुद्री वातावरण की जटिलताओं को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं और जुड़ाव और ज़िम्मेदारी की गहन भावना को बढ़ावा दे सकते हैं।

स्रोत: **https://radicalecologicaldemocracy.org/tides-of-thought-integrating-science-and-spirit-in-marine-bioregionalism/**

✦✦

३. उम्मीद के निशाँ

पारिस्थितिकीय तंत्र पुनर्स्थापन समुदाय: जॉन डी.लिउ

लगभग ३० वर्षों से, पारिस्थितिकी वैज्ञानिक और फिल्म निर्माता जॉन डी. लिउ विश्व भर में क्षतिग्रस्त भूदृश्यों को पुनर्जीवित करने का काम करते आए हैं, और उन्होंने ये साबित कर दिया है कि बदलाव लाने के लिए एक व्यक्ति कम नहीं होता। जॉन: जैसे ही आप पारिस्थितिकीय क्षरण को रोक देते हैं, जंगल वापस आ जाते हैं।

४.६ अरब वर्ष पहले पृथ्वी के निर्माण के बाद से, सभी प्राकृतिक प्रणालियाँ एक विकासवादी प्रक्रिया के माध्यम से परिपूर्ण हुई हैं। अगर हम इसे ४६ वर्षों में घटाएँ, तो मनुष्य केवल चार घंटे से ही अस्तित्व में रहा है... लेकिन फिर भी हमें लगता है कि हम सब कुछ जानते हैं और हम प्रकृति पर राज कर सकते हैं, ऐसा पारिस्थितिकी वैज्ञानिक, फिल्म निर्माता और भूदृश्य पुनर्निर्माता विशेषज्ञ जॉन डी.लिउ का कहना है। सौभाग्य से, प्रकृति में स्वयं को पुनर्जीवित करने की क्षमता है। इसलिए जैसे ही आप किसी भू-दृश्य को नष्ट करना बंद कर देते हैं, उदाहरण के लिए, गहन पशुपालन बंद करके, वह क्षेत्र कुछ ही वर्षों में पुनर्स्थापित हो जाएगा। फिर जल चक्र वापस आ जाता है, मिट्टी फिर से उपजाऊ हो जाती है, पारिस्थितिकीय तंत्र से विषाक्त पदार्थ बाहर निकल जाते हैं और जैव विविधता बढ़ जाती है।

निरंतर लोभ

इसकी संभावना बहुत कम है कि आप गलती से ऐसे गृह पर पहुँच जाएँ जहां के वायुमंडल में अत्यधिक आक्सिजन हो, मीठे पानी की व्यवस्था, उपजाऊ मिट्टी और प्रचुर जैवविविधता हो। हम सच में स्वर्ग में रहते हैं, जॉन कहते हैं। लेकिन फिर भी, हम पृथ्वी पर जीवन बनाए रखने वाली प्राकृतिक प्रणालियों के बजाए भौतिक चाहतों को प्राथमिकता देते रहते हैं। यह हमारी अर्थव्यवस्था का मूलभूत दोष है, जिसने मानवता को सामूहिक विनाश का पारिस्थितिक हथियार बना दिया है। इसके अलावा, चूंकि हम निरंतर और ज़्यादा पाने के लोभ में रहते हैं, हम खुद को मूल रूप से दुखी बना रहे हैं। हमने इच्छाओं का एक ऐसा गहरा गड्ढा बना लिया है जिसे हम कभी नहीं भर पाएँगे। इसलिए, भू-दृश्यों का पुनर्जनन केवल पृथ्वी को पुनर्स्थापित करने का तरीका ही नहीं है। यह हमारी आत्मा के भी घाव भरता है।

लोएस पठार क्षेत्र

१९९० के दशक की शुरुआत में, जॉन अपने पिता के देश, चीन में एक पत्रकार के रूप में काम कर रहे हैं। अपने आसपास पर्यावरण प्रदूषण से हैरान होकर, वे पत्रकार का अपना सफल

लोएस पठार क्षेत्र, बहाली कार्यों से पहले और बाद में। फोटो: कॉमनलैंड

काम छोड़कर प्रकृति पर दस्तावेज़ी फिल्में बनाने लगते हैं। और इस तरह १९९५ में मैं लोएस पठार में पहुँचा, बेल्जियम के क्षेत्रफल के बराबर का क्षेत्र, जॉन बताते हैं। उन दिनों, वह दुनिया का सबसे क्षतिग्रस्त भू–दृश्य था। जहां तक नजर जाती, बंजर घाटियां दिखाई देतीं, छोटी ग्रैन्ड कैन्यन जैसी, जो भारी वर्ष से बनी थीं। लेकिन वहाँ एक बूंद पानी भी नहीं बचा था, क्योंकि वो इलाका पूरी तरह से सूखा था।

इससे उनको अहसास होता है कि अगर हम लंबे समय तक मिट्टी को नष्ट करते रहें, तो पर्याप्त बारिश वाले भू–दृश्य भी रेगिस्तान में बदल सकते हैं। एक स्वस्थ पारिस्थितिकीय तंत्र में, पौधों और पेड़ों की जड़ें स्पॉन्ज का काम करती हैं: वे पानी को सोखती हैं और पकड़ कर रखती हैं, जॉन समझाते हैं। लेकिन जब मिट्टी को पूरी तरह से बंजर छोड़ दिया जाता है, जैसे कि वनों की कटाई के बाद, तो यह स्पॉन्ज प्रभाव खत्म हो जाता है और मिट्टी की उपजाऊ ऊपरी परत हर बरसात के साथ बह जाती है, जिसके कारण वह क्षेत्र क्षरणग्रस्त और क्षीण हो जाता है।

बहाली कार्यों के २० वर्ष बाद, लोएस पठार अब हरा, उपजाऊ और प्रचुर हो गया है, जैसा कि हम जॉन की दि लेसन्स ऑफ दि लोएस प्लेटू नामक वृत्तचित्र में देख सकते हैं। लेकिन इथियोपिया में भी, जोर्डन और कई अन्य देशों में जॉन ने साबित कर दिया है कि बड़े पैमाने पर भू–दृश्य की बहाली संभव है। असल में यह काफ़ी आसान है, वे कहते हैं, कोई भी भू–दृश्य खराब होने के लिए श्रापित नहीं होता, क्योंकि प्रकृति इस प्रकार के पारिस्थितिकीय तंत्र नहीं बनाती। इसलिए, क्षरण का कारण लगभग हमेशा मानवीय क्षति ही होती है। एक बार आप उसे रोक दें, तो आप किसी भी क्षेत्र को बहाल कर सकते हैं।

पूरा लेख यहाँ पढ़ें: **https://re-generation.cc/en/pionier/john-liu-ecosystem-restoration-camps/**

✦✦

४. उदहरणात्मक अध्ययन

लोगों में निहित, सामूहिक कार्रवाई के माध्यम से वनों का पुनर्स्थापन (विशेष रूप से लिखित)

नेहा नेगी और महेश काले

स्थानीय लोगों द्वारा पौधरोपण
फोटो: हिमल प्रकृति से दीपक

गोरी नदी घाटी, जो कि हिमालय में उत्तराखंड के पिथौरागढ़ ज़िले में स्थित है, में सरमोली–जैन्ती वन पंचायत है, जिसका क्षेत्रफल ३५ हेक्टेयर है। इस वन में विविध वनस्पति प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जैसे कि बांज, बुरांश, देवदार और साथ ही घास के मैदान और झाड़ियों के झुरमुट भी। इस क्षेत्र में अक्सर दिखाई देने वाले जंगली जानवरों में हिमालयी कस्तूरी मृग, काकड़, तेंदुआ, और विविध प्रजाति के पक्षी जैसे कि हिमालयी मोनाल और कोकलास तीतर शामिल हैं।

वर्ष २००० में, सरमोली जैन्ती के लोगों ने देखा कि उनकी पवित्र झील मेसर कुंड, धीरे–धीरे खत्म हो रहा है। उन्होंने यह भी देखा कि उसके आसपास का जंगल खत्म होता जा रहा है। वन पंचायत ने हमेशा से रोज़मर्रा की ज़रूरतों की आपूर्ति का समर्थन किया, जैसे कि मवेशियों के लिए चारा, खाना पकाने और सर्दियों में गरमाई के लिए जलाऊ लकड़ी। लेकिन समय के साथ–साथ, उन्हें अपनी और व्यापक भूमिका नज़र आने लगी। वन पंचायत ने आसपास की तीन ग्राम पंचायतों में ढलानों की सुरक्षा और स्थिर जल स्त्रोत उपलब्ध करवाया।

पौधारोपण की तैयारी

समुदाय ने मिलकर अपने जंगल की सुरक्षा और प्रबंधन संभाला जिसमें उन्होंने पारंपरिक ज्ञान के साथ लोकतान्त्रिक निर्णय–प्रणाली के तरीके अपनाए। उन्होंने एक प्रतिनिधि मण्डल का चुनाव किया, उसमें महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की, और सतत वन उपयोग तथा संरक्षण के लिए नियम बनाए। पिछले वर्षों में, उन्होंने सरकारी योजनाओं और नागरिक समाज प्रयासों के साथ मिलकर क्षतिग्रस्त क्षेत्रों का पुनर्जनन, वन्यजीव आवास क्षेत्रों की सुरक्षा, और स्थानीय जल स्त्रोतों को बेहतर बनाने का काम किया है। इस आधारशिला पर काम आगे बढ़ाते हुए, वर्ष २०२२ में उन्होंने एक पौधरोपण अभियान चलाया जिसमें स्थानीय चौड़े पत्ते वाली प्रजातियों और पारंपरिक लकड़ी देने वाले पेड़ों जैसे कि देवदार, सुरई, बांज (बीज से), जंगली चेरी, और दूसरी पारिस्थितिकीय महत्व की प्रजातियों के पुनर्जनन पर ज़ोर दिया, जिन्हें अक्सर जल्दबाज़ी में किए जाने वाले वनीकरण प्रयासों में नज़रंदाज़ कर दिया जाता है। उनका उद्देश्य केवल पेड़ों की गणना बढ़ाना नहीं, बल्कि पारिस्थितिकीय संतुलन, जैवविविधता, और लंबे समय के लिए सतत लकड़ी की उपलब्धता था।

पौधरोपण अभियान का नेतृत्व स्थानीय युवाओं ने गाँव वालों के साथ मिलकर किया, और एक संरचित और सहभागी दृष्टिकोण अपनाया। सरमोली में, पौधारोपण करने से एक सप्ताह पहले यह समझने के लिए सर्वेक्षण किया गया कि कितने लोग इच्छुक हैं और कितने पौधों की ज़रूरत होगी, आम तौर पर १०० से २०० के बीच। स्थानीय ज्ञान के आधार पर, उन्होंने हर पौधे के लिए ११ मीटर के गड्ढे बनाए, बढ़े–बूढ़ों द्वारा फलदार पेड़ों के लिए उपयोग किया जाने वाला एक पारंपरिक तरीका जिससे बेहतर जड़ें पनपती हैं। देसी प्रजातियों का ध्यान से चयन किया गया जिसमें जंगली चेरी को शामिल किया गया, क्योंकि वह सदाबहार पेड़ है। पौधारोपण के लिए हरेला का समय चुना गया, जो कि उत्तराखंड में मॉनसून की शुरुआत का त्योहार है और चूंकि इस समय जलवायु परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं तो पौधों के जीवित रहने की ज़्यादा संभावना होती है। युवा नेतृत्व करने वालों ने दूसरी वन पंचायतों के लोगों को भी जोड़ा और वहाँ भी स्थानीय नेतृत्व में ऐसे ही अभियान चलाए गए, जिससे साझा ज़िम्मेदारी की भावना मज़बूत हुई। देवदार और सुरई का अनुपात ७५:२५ रखा गया, और बाकी प्रजातियों का चयन भी प्रत्येक पौधारोपण स्थल के पारिस्थितिकीय संदर्भ के अनुसार किया गया। यह सिर्फ एक पौधारोपण अभियान ही नहीं, बल्कि स्थानीय प्रबंधन और पारिस्थितिकीय देखभाल पर आधारित एक सामूहिक संरक्षण प्रयास था।

वितरण के लिए बांज के बीज

एक चुनौती जिसका समुदाय को सामना करना पड़ा वो था पौधों को अनाधिकृत रूप से हटाकर दूसरी जगह लगाना। कुछ ऐसे मामले हुए, जहां चारा इकट्ठा करने वाले लोग अनजाने में नए लगाए गए पौधों को अपने साथ ले गए, जिससे पुनर्जनन की प्रक्रिया बाधित हो गई। उनको फटकारने के बजाए, वन पंचायत ने जागरूकता बढ़ाने पर ज़ोर दिया, और लोगों को प्रोत्साहित किया कि वे चिह्नित वन क्षेत्रों में पौधों को बिना रुकावट बढ़ने का मौका दें। इस बीच युवाओं ने इस प्रयास को सरमोली से आगे फैलाने में सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने आसपास की वन पंचायतों के सरपंचों से बात की, अपने अनुभव उनके साथ बांटे और उन्हें ऐसे ही पौधारोपण अभियान चलाने के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रयास से न सिर्फ गांवों की भागीदारी मज़बूत हुई, बल्कि दूसरे समुदायों ने भी नर्सरियाँ विकसित कीं, जिससे लंबे समय तक वनों के पुनर्जनन का आधार मजबूत बना।

सरमोली–जैन्ती के अनुभव से एक प्रमुख सीख मिलती है कि सामुदायिक भागीदारी में निहित पारिस्थितिकीय बहाली के लिए समय, धैर्य, और आपसी विश्वास की ज़रूरत होती है। यह काम रातोंरात नहीं हुआ; इसमें निरंतर प्रयास और रिश्ते बनाने, परिस्थिति की गहरी समझ, और वनों से फिर से जुड़ाव बनाने का कई वर्षों का काम लगा। यह प्रक्रिया धीरे–धीरे औरतों के जीवन के अनुभवों, साझा नियमों, और ज़मीन से भावनात्मक जुड़ाव से पनपी। जब लोग प्रकृति के साथ जुड़ाव महसूस करते हैं, तो संरक्षण उनकी आदत बन जाता है, और काम नहीं रहता, जीने का तरीका बन जाता है।

इस दृष्टिकोण ने न सिर्फ धीरे बढ़ने वाली स्थानीय और लकड़ी की प्रजातियों के पुनर्जनन में मदद की, बल्कि पुनर्वनीकरण को एक साझा ज़िम्मेदारी के रूप में प्रोत्साहन दिया, नर्सरी–आधारित आजीविका को बढ़ावा दिया, और वनों में जैवविविधता को। पारंपरिक ज्ञान, सामुदायिक देखभाल, और सोचे–समझे नियोजन के माध्यम से, सरमोली–जैन्ती के लोग एक ऐसे जंगल का पोषण कर रहे हैं जो उनकी अपनी पीढ़ी से कहीं आगे तक की पीढ़ियों को लाभ देगा।

आभार: हिमल प्रकृति के दीपक पछाई को विशेष धन्यवाद जिन्होंने साइट विज़िट के दौरान अपनी बहुमूल्य समझ साझा की और विचारशील मार्गदर्शन दिया।

इस उदहरणात्मक अध्ययन में कुछ जानकारी कम्यूनिटी कंजर्व्ड एरियाज़ के पोर्टल से भी शामिल की गई है, जो **https://www.communityconservedareas.org** से प्राप्त की जा सकती है।

◆◆

ज्ञान और अनुभव साझा करके समुदाय–आधारित संरक्षण को बढ़ावा देना

कल्पवृक्ष पर्यावरण समूह की संरक्षण एवं आजीविकाएं टीम से नीमा पाठक ब्रूम और ईशा जोशी

पूरी दुनिया में स्वदेशी लोग और स्थानीय समुदाय सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक और आजीविका के कारणों से प्राकृतिक पारिस्थितिकीय तंत्रों का संरक्षण करते आए हैं। बढ़ती संख्या में, ऐसे क्षेत्रों को औपचारिक तौर पर 'सामुदायिक संरक्षित क्षेत्र (सीसीए)' के रूप में घोषित किया जा रहा है, जिनके प्रशासन और प्रबंधन के लिए समुदाय विशिष्ट नियम बना रहे हैं। १९९० के दशक से, कल्पवृक्ष सीसीए की घोषणा और प्रबंधन के माध्यम से पूरे भारत के स्थानीय समुदायों के साथ उनके संरक्षण प्रयासों को बढ़ावा और सहयोग देने के लिए काम कर रहा है। संस्थापक सदस्य और आईसीसीए कन्सॉर्श्यम के भारतीय समन्वयक के रूप में, हम वैश्विक, अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर पर सीसीए से जुड़े संगठनों और व्यक्तियों के साथ नेटवर्क भी बनाते हैं।

हमारे प्रमुख कार्यों में से एक नागालैंड राज्य में रहा है, जहां, स्थानीय संस्थाओं के सहयोग से, हम शोध, दस्तावेज़ीकरण, पैरवी, सीसीए के बारे में दृश्यता और जागरूकता को बढ़ावा देने, सीसीए पर विमर्श बढ़ाने और ज़मीनी सीसीए क्षेत्रों की आवश्यकता अनुसार सहायता प्रदान करने का काम कर रहे हैं। ४३२ सीसीए के साथ, नागालैंड इस आंदोलन में सबसे आगे आकर उभरा है जो स्वदेशी लोगों और स्थानीय समुदाय के नेतृत्व में हो रहे संरक्षण के काम को मान्यता देने के साथ–साथ, उन्हें सुरक्षा और मजबूती देता है। नागालैंड अपनी जैव–भौगोलिक स्थिति, वनस्पतियों, जीवों और पारंपरिक ज्ञान के समृद्ध संग्रह, साथ ही अपने सामाजिक–सांस्कृतिक इतिहास के कारण भारतीय उपमहाद्वीप में एक विशिष्ट स्थान रखता है। हालाँकि, राज्य की समृद्ध जैव विविधता और प्रचुर वन क्षेत्र वनों की कटाई, वन संसाधनों के क्षरण, भूमि–उपयोग के तरीकों में परिवर्तन, शिकार और जंगली वनस्पतियों और जीवों के अवैध व्यापार सहित कई खतरों का सामना कर रहे हैं।

लेकिन चुनौतियों के बावजूद, नागालैंड का सामुदायिक संरक्षण देश भर के स्थानीय समुदायों के लिए एक आदर्श बन सकता है जो अपने पारंपरिक आवासों में लंबे समय से चली आ रही संरक्षण प्रथाओं को औपचारिक रूप देना चाहते हैं। यह बात जून २०२४ में दूसरे लेखक की लद्दाख यात्रा के दौरान सामने आई, जिसे स्नो लेपर्ड कंजरवेंसी – इंडिया (एसएलसी) द्वारा 'समुदाय–नेतृत्व और अधिकार आधारित संरक्षण दृष्टिकोण' पर क्षमता निर्माण कार्यक्रम के लिए सहयोग प्रदान किया गया था। इन कार्यशालाओं के दौरान, स्थानीय समुदाय के प्रतिभागियों ने अपने पारंपरिक नियंत्रण/कब्ज़े के अंतर्गत आने वाले प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों को 'सीसीए' घोषित करने के विभिन्न आयामों को समझने की इच्छा व्यक्त की। इसी ने हमें नवंबर २०२४ में नागालैंड की एक सामुदायिक आदान–प्रदान यात्रा आयोजित करने के लिए प्रेरित किया। तीन लद्दाखी गांवों – तयार, ससपोचे और न्यारक्स, के प्रतिनिधियों और एसएलसी के सदस्य तथा कल्पवृक्ष ने इस आदान–प्रदान यात्रा में भागीदारी की। इस यात्रा का उद्देश्य था सीसीए घोषित करने की प्रक्रिया, सीसीए के अंतर्गत गतिविधियों और प्रबंधन के नियम तथा मार्गदर्शिका के बारे में लोगों को बताना। भागीदारों में गांवों के बड़े, महिलाओं, युवा और एसएलसी के शोधकों का अच्छा मिश्रण था।

यात्रा के पहले भाग में, हम पूर्वी नागालैंड के प्रचुर भू–दृश्यों से गुज़रे, जिसके दौरान लेम्साचेनलोक, एक समुदाय आधारित संस्था ने हमारी मेजबानी की। लोंगलेंग और नोकलेक जिलों में सीसीए देखने के साथ–साथ, लद्दाखी समूह ने चोकलांगन गाँव में आयोजित नागालैंड के पूर्वी ज़िलों के लगभग ५० सीसीए के लिए आयोजित कार्यशाला में भाग लिया। इस कार्यशाला के उद्देश्यों में से एक था कि समुदाय–आधारित संरक्षण के माध्यम से सतत विकास लक्ष्यों को कैसे प्राप्त किया जा सकता है – इस विषय पर चर्चा करना। चोकलांगन गाँव के लोगों ने इसे अक्षरशः आगे बढ़ाया। उपयोग की जाने वाली प्रत्येक चीज़ गाँव में ही बनाई या ली गई थी, अतिथियों को स्थानीय लोगों के घरों में ठहराया गया और हर चीज़ स्थानीय बांस से बनी थी, जिसकी वजह से प्लास्टिक का उपयोग शून्य था। इस सब से गाँव की अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण राजस्व की कमाई भी हुई। कुल मिलाकर, यह सीसीए के माध्यम से जैव विविधता संरक्षण को बढ़ावा देने में विभिन्न समुदायों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोणों की विविधता को समझने का एक अनूठा अवसर था। उदाहरण के लिए, कई नागा समुदायों ने मौसमी प्रतिबंध के बजाए सीसीए की

सीमाओं के अंदर शिकार पर संपूर्ण प्रतिबंध की प्रभावकारिता पर चर्चा की, साथ ही पारंपरिक झूम और आधुनिक सीढ़ीनुमा खेती के फायदे और कमियों पर भी चर्चा की। सामुदायिक आजीविका, भूमि उपयोग के बदलते स्वरूप, सीसीए प्रशासन में युवाओं, महिलाओं और बुजुर्गों की भूमिका, तथा सीसीए के प्रबंधन और जैव विविधता संरक्षण क्षमता से संबंधित मुद्दों पर भी महत्वपूर्ण चर्चा हुई।

लद्दाखियों को भी यह समझने का मौका मिला कि चोकलांगन गाँव ने झूम और सीढ़ीनुमा खेती को मिलाकर एक एकीकृत कृषि प्रणाली कैसे अपनाई; उनकी सांस्कृतिक गतिविधियाँ लोगों की वास्तविकता से कैसे जुड़ी हैं; उनके जल संरक्षण के प्रयास; हूलॉक गिबन्स के आवास का संरक्षण, और स्थानीय युवाओं द्वारा संचालित गाँव के स्कूल में पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक शिक्षा को एकीकृत करने का उनका प्रयास। इनमें से कई गतिविधियाँ युवाओं और महिलाओं द्वारा संचालित की जाती हैं और लेम्साचेनलोक उन्हें सहयोग देता है।

लद्दाख से आए समूह ने तेज़ी से बढ़ते और अनियंत्रित व्यावसायीकरण, बुनियादी ढाँचे के विकास और पर्यटन से अपने संघर्ष की कहानियाँ साझा कीं। इस समूह ने इस बात पर प्रकाश डाला कि नागालैंड में ये उभरते हुए खतरे किस तरह स्थानीय पारिस्थितिकी, सामाजिक–सांस्कृतिक रिश्तों और आजीविका को तहस–नहस कर सकते हैं।

केनोनो फ़ाउंडेशन के हमारे सहयोगियों द्वारा नियोजित यात्रा के दूसरे चरण में, राज्य के दो सबसे पुराने औपचारिक रूप से घोषित सामुदायिक संरक्षण क्षेत्र, सेंडेन्यू और खोनोमा, का दौरा शामिल था। सेंडेन्यू में, सामुदायिक संरक्षण क्षेत्र में पैदल यात्रा ने प्रतिभागियों को सामुदायिक संरक्षण क्षेत्र के शासन और प्रबंधन तंत्र को गहराई से समझने और आजीविकाएँ पैदा करने के लिए विभिन्न पहलों के बारे में जानने का अवसर दिया, जिनमें कॉफ़ी की खेती और व्यापार जैसे सामुदायिक उद्यम, और स्थानीय बच्चों में स्थानीय जैव विविधता के बारे में जागरूकता पैदा करने की पहल शामिल हैं।

खोनोमा जो कि राज्य का एक प्रतिष्ठित सीसीए है और परिणामस्वरूप राज्य में इको–पर्यटन के केंद्र के रूप में उभरा है, ने समतामूलक पर्यटन प्रथाओं के लिए प्रभावी तरीकों का प्रदर्शन किया है, जिसमें लोगों के बजाय गांव की संस्थाओं द्वारा चलाई जाने वाली निष्पक्ष होमस्टे बुकिंग व्यवस्था, अपशिष्ट निपटान तकनीकें और टूर ऑपरेटरों, टूर गाइडों और पक्षी–प्रेमियों के रूप में स्थानीय लोगों की भागीदारी के माध्यम से आजीविका के विकल्प बढ़ना शामिल है।

इन दो यात्राओं के बीच कोहिमा के किसामा गांव में हॉर्नबिल महोत्सव में एक पड़ाव, नागा संस्कृति, खाद्य प्रणालियों, भाषाओं, आधुनिक जीवन और संरक्षण प्रयासों के बारे में व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करने में उपयोगी साबित हुआ। लद्दाखियों ने नागालैंड सामुदायिक संरक्षित क्षेत्र फोरम (एनसीसीएएफ) के पदाधिकारियों के साथ भी मुलाकात की, ताकि समुदाय के नेतृत्व वाली संरक्षण पहलों के सामने आने वाली चुनौतियों पर विचार–विमर्श किया जा सके, विशेष रूप से, सीसीए को समर्थन देने के लिए राज्य नीति न होना और सुसंगत और नियमित कानूनी, नियामक, सलाहकार और वित्तीय सहायता की कमी के संदर्भ में। उन्होंने इस बात पर भी चर्चा की कि भारतीय वन्य जीव संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत विभिन्न संरक्षित क्षेत्र श्रेणियाँ राज्य में सीसीए क्षेत्रों को मान्यता देने के लिए उपयुक्त कानूनी ढाँचा क्यों नहीं हो सकतीं। संविधान की छठी अनुसूची के तहत सुरक्षा की लद्दाख की माँग के संदर्भ में, अनुच्छेद ३७१ए के तहत नागालैंड को प्राप्त विशेष संवैधानिक दर्जे और संरक्षण के संदर्भ में इसके निहितार्थों पर भी विचार–विमर्श किया गया।

लद्दाख और नागालैंड की स्थलाकृति, संस्कृति और प्राप्त कानूनी सुरक्षाएँ एक–दूसरे से बिल्कुल अलग हैं। फिर भी, प्रकृति से जुड़ाव और पारंपरिक ज्ञान व जीवनशैली को व्यावसायीकरण और आधुनिकता के दबावों के साथ संतुलित करने का संघर्ष उन्हें एकजुट करता है। नागालैंड में जहाँ पिछले कुछ दशकों से ऐसा हो रहा है, वहीं लद्दाख के गाँव अभी अपने सामुदायिक साझा संसाधनों को अतिदोहन से बचाने, जैव–सांस्कृतिक विविधता, जल संकट से निपटने और जलवायु परिवर्तन अनुकूलन तंत्र के रूप में सीसीए घोषित करने की प्रक्रिया की शुरुआत ही कर रहे हैं। टार गाँव नवंबर २०२४ में सीसीए घोषित करने वाला लद्दाख का पहला गाँव बन गया है।

इस प्रकार, भारत के अन्य भागों की तरह इन दोनों राज्यों के ग्राम समुदाय वैश्विक सतत विकास लक्ष्यों और जैव विविधता सम्मेलन (सीबीडी) के कुनमिंग–मॉन्ट्रियल वैश्विक जैव विविधता

ढांचे (केएमजीबीएफ) के अंतर्गत विभिन्न लक्ष्यों को प्राप्त करने में योगदान दे रहे हैं। विशेष रूप से वे लक्ष्य ३ को प्राप्त करने में योगदान दे रहे हैं, जिसमें २०३० तक सभी स्थलीय, अंतर्देशीय जल, समुद्री और तटीय क्षेत्रों के ३०% के प्रभावी संरक्षण और प्रबंधन का आह्वान किया गया है। महत्वपूर्ण बात यह है कि लक्ष्य विशेष रूप से स्वदेशी लोगों और स्थानीय समुदायों के अधिकारों को मान्यता देने और उनका सम्मान करने पर ज़ोर देता है, विशेष रूप से उन क्षेत्रों पर जो पारंपरिक रूप से उनके कब्जे में रहे हैं।

लद्दाख और नागालैंड की राज्य सरकारों के पास सीसीए पर कोई आधिकारिक नीति नहीं है और न ही उन्होंने सीसीए को आधिकारिक तौर पर मान्यता दी है और न ही लक्ष्य ३ जैसे संरक्षण लक्ष्यों की पूर्ति में उनकी भूमिका को मान्यता दी है। इस प्रकार, दोनों राज्यों में ही प्रथागत संचायती भूमि और विशेष रूप से सीसीए के सामने गंभीर खतरे मंडरा रहे हैं। इस प्रकार, यह आदान–प्रदान यात्रा न केवल सीसीए के प्रबंधन और प्रशासन के लिए विभिन्न तंत्रों के बारे में ज्ञान साझा करने के लिए महत्वपूर्ण थी, बल्कि दोनों राज्यों में सामुदायिक–नेतृत्व वाले संरक्षण के लिए प्रमुख खतरों की पहचान करने के लिए भी महत्वपूर्ण थी। इनमें लद्दाखी गाँवों के आसपास की ज़मीन पर व्यक्तिगत और सामुदायिक पट्टों का न होना, भारतीय संविधान की छठी अनुसूची और अनुच्छेद ३७१ए द्वारा दी गई सुरक्षा के अभाव में घटती स्वायत्तता, और अनियमित पर्यटन तथा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के खतरे शामिल थे। इस यात्रा ने दोनों समुदायों को एक–दूसरे से उन विभिन्न तरीकों को समझने का भी मौका दिया जो उन्होंने खतरों का मुकाबला करने और समुदायों के सामने आने वाली समस्याओं के समाधान के लिए अपनाए थे।

✦✦

नागालैंड के लाँगलेंग ज़िले में एक सामुदायिक मत्स्यपालन तालाब

लद्दाख की टीम ने चोकलांगन गाँव में आयोजित पूर्वी नागालैंड के सामुदायिक संरक्षित क्षेत्रों के नेटवर्क की बैठक में भाग लिया

चोकलांगन गांव सीसीए में कृषि तकनीकों पर सामुदायिक बातचीत

हॉर्नबिल महोत्सव में नागा संस्कृति के बारे में जानकारी।

खोनोमा में सामुदायिक नेताओं के साथ टिकाऊ पर्यटन और सामुदायिक नेतृत्व वाले सीसीए प्रबंधन पर चर्चा

पाठकों के लिए संदेश:

प्रिय पाठकों, यदि आप समुदाय व संरक्षण की प्रति किसी अलग पते पर प्राप्त करना चाहते है तो कृपया हमें अपना पता milindwani@yahoo.com पर या नीचे लिखे पते पर भेज दें।

कल्पवृक्ष

डॉक्यूमेन्टेशन ऐंड आउटरीच सेन्टर, अपार्टमेंट ५, श्री दत्ता कृपा, ९०८, डेक्कन जिमखाना,

पुणे ४११००४. महाराष्ट्र – भारत

वेबसाइट : www.kalpavriksh.org

समुदाय व संरक्षण : जैव विविधता संरक्षण तथा आजीविका सुरक्षा संस्करण अंक १४, नं. १ मार्च २०२५ – अगस्त २०२५

संपादन : मिलिन्द वाणी

संकलन : अरनाज़ खान

हिंदी अनुवाद : निधि अग्रवाल

कव्हर फोटो : जॉन कुरियन

अन्य फोटो : सभी फोटो के नीचे नाम दिए गए हैं।

प्रकाशक : कल्पवृक्ष,
अपार्टमेंट ५, श्री दत्ता कृपा, ९०८,
डेक्कन जिमखाना, पुणे–४११००४.
फोन : ९१–२०–२५६७५४५०,
फैक्स : ९१–२०–२५६५४२३९
ई–मेल : KVoutreach@gmail.com,
वेबसाइट : www.Kalpavriksh.org

आर्थिक सहयोग : मिजेरिओर, आचेन, जर्मनी

निजी वितरण के लिये

प्रकाशित विषयवस्तु (Printed matter)

सेवा में,